A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

# जनता जर्नादन से सीधी बात

## आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की 'जनता लहरी' के विशेष आलोक में

राधावल्लभ शर्मा

***कूटशब्द*** *लोकतन्त्र, जनता, योगक्षेम, हित।*

***लोकतन्त्र में जनता का हित ही सर्वोपरि माना जाता है। जनवादी विचारधारा को बढ़ावा देने के लिए भाषा साहित्य में नवजागरण बेहद आवश्यक है। जीवन की धड़कनें जिस साहित्य में अभिव्यञ्जित होती है। वही जनता के योगक्षेम की बात कर सकता है। आचार्य त्रिपाठी की जनता लहरी इसी बात को पुरजोर ढंग से उठा रही है। प्रस्तुत निबन्ध में जनवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए जनता की बात को प्रमुख स्थान दिया गया है।***

भारतीय गणतन्त्र विश्व का सबसे विशाल एवं प्रभुत्वसम्पन्न गणतन्त्र है। गणतन्त्र से तात्पर्य जनतन्त्र अथवा लोकतन्त्र से है। जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए चुना गया सुशासन ही लोकतन्त्र कहलाता है। जनता द्वारा संचालित किया तन्त्र ही लोकतन्त्र है। इस लोकतन्त्र या जनतन्त्र में जनता की भागीदारी प्रमुख है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने जनतन्त्र को अपना विषय बनाया है। वे कहते हैं जनतन्त्र ही सुशासन व्यवस्था का सफलीभूत अंग है। उन्होंने अपनी श्रद्धा इसमें पूर्णरूपेण प्रकट की है। उनका विश्वास है कि एक दिन जनता संगठित होकर जाग्रत होकर, समाज में व्याप्त अन्याय तथा इस भ्रष्टतन्त्र को समाप्त कर सकेगी और फिर से रामराज्य की संकल्पना साकार होती हुई दिखाई देगी। ऊँचे पदों पर बैठे नेतागण, अधिकारी वर्ग, शासन चलाने वालों में व्याप्त भ्रष्टाचार और बेईमानी पर भी कवि ने अपना तीव्राक्रोश प्रकट किया है।

'जनतालहरी' में जनता की बात को मुख्य स्थान दिया गया है। **संगठन में शक्ति है।** इस ध्येय वाक्य को आधार मानकर ही कवि ने **सामूहिक चेतना** का शंखनाद करने का आह्वान किया है। विवेकशील समाज का संगठित होकर कार्य करना ही साक्षात् ईश्वर की पूजा है। सामाजिक समरसता के साथ एकजुट होकर काम्यभाव से सामाजिक कार्यों को सम्पादित करना ही ईश्वर की पूजा है।

ISSN 976-8645

**कर्मण्येवाधिकारस्ते** इस वाक्य को आधार मानकर सामाजिक कर्म करना ही मुख्य आधार होना चाहिए। विवेकशील व्यक्ति ही संगठित समाज का निर्माण करता है और समाज को नई दिशा प्रदान करता है तथा नवसमाज की संकल्पना के साथ अपने कर्मोद्देश्य में सफलता के सोपानों पर आरूढ़ होता है।

कवि ने इस कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों पर गहरा विरोध प्रकट किया है। आड़म्बर, संकीर्ण धार्मिकता, धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचार और अनाचार, सतीप्रथा जैसी विसंगतियों पर गहरा क्षोभ प्रकट किया है। कट्टरपन्थी गरीब पर होने वाले अत्याचार धार्मिक अक्षुण्णता को नष्ट करने वाले समाजकंटकों की साजिश नाकाम करने की चिन्ता प्रकट की है। नीचे तबके से लेकर उच्चपदासीन व्यक्तियों को इनसे सावधान रहने की सलाह दी गई है।

प्रथम पद्य में कवि ने अपनी बात वास्तव में जनता के प्रतिनिधि, भूमिपुत्र किसान से प्रारम्भ की है। जिसकी कड़ी मेहनत एवं सच्ची लगन से ही खेत में पौधे लहराते हैं। तथा उसी की मेहनत का सच्चा फल सभी प्राप्त करते हैं। मङ्गलाचरण के रूप में प्रस्तुत इस पद्य में कवि ने सबकी रक्षा की कामना की है। ग्रीष्म ऋतु की धूप के कारण असहाय से लगने वाले दिनों में कृष्णमेघ की वह शुभ–छाया आपकी रक्षा करे। मेहनत–मजदूरी करने वाले मजदूर के सिर पर आई हुई पसीने की बूँदे इस बात की साक्षी हैं कि वह कितनी मेहनत करता है। यह काले बादल की छाया खेत में काम करते अन्य मजदूरों को प्रसन्न करती है। इस पद्य में कवि ने मेहनती किसान का वास्तविक चित्रण किया है। सजीव चित्रण के माध्यम से कवि ने अपनी बात पुरजोर रूप से की है कि मेहनत मजदूरी की कमाई करके इस जनतन्त्र में व्यक्ति विशेषकर छोटे लोग प्रसन्नता का अनुभव करते हैं[1]।

द्वितीय पद्य में श्री त्रिपाठी जी ने व्यक्तियों की श्रेणियाँ विभाजित की हैं। इस जनतन्त्र में कई तरह के लोग कई तरह के सम्प्रदाय हैं। कई वादों के प्रवर्तक हैं। कुछ लोग हैं, जो भक्तियुक्त चित्त से विभिन्न स्तोत्रों के माध्यम से देवस्तवन करते हैं। वे भक्तिपरायण हैं। कुछ लोग चाटुकारिता में अटूट विश्वास कर दुष्ट, भ्रष्ट, चरित्रहीन चञ्चल चित्त वाले नेताओं की झूठी प्रशंसा एवं उनका गुणार्जन करते हैं। परन्तु कवि कहते हैं कि हम तो उस राष्ट्र की जनता को कोटिश: प्रणाम करते हैं जो निश्चित रूप से स्वभाव से ही लय और आविर्भाव का कारण है तथा योगक्षेम की प्रवर्तक है।

इस पद्य में कवि ने जनता को ही सर्वोपरि मानकर साक्षात् देवी स्वरूप मानते हुए उसको सर्वोच्च स्थान दिया है। ये इस राष्ट्र की जनता ही है जो सभी के योगक्षेम के लिए सदैव तत्पर रहती है। कवि का अभिप्राय यह है कि हम राष्ट्र आराधना करें, राष्ट्र के हित में सोचें तथा राष्ट्र की जनता के दु:ख दर्द को बाँटें तभी हम जनतन्त्र में रहने के अधिकारी हैं[2]।

ISSN 976-8645

तृतीय पद्य में कवि ने शास्त्रों की तरफ रुख़ किया है। शास्त्र की पाण्डित्य परम्परा को उन्होंने बताया है। एक एक शास्त्र को लेकर शास्त्रचर्चा भी कर दी है। इसी के साथ-साथ प्रत्येक शास्त्र का अपना एक वैशिष्टय भी बताकर अपना मत प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं-

**यो न्याये रमतेऽक्षपादकथिते मे शेमुषी सर्वतो,**
**भावाच्छ्लष्यति नो कणादकथितं वैशेषिकं दर्शनम्।**
**मीमांसामपि कर्मकाण्डजटिलां मीमांसते नो तथा**
**निर्वाणं किमु मर्षयेद्धतगुणं शून्यस्य दूरे कथा[3]।।**

अक्षपाद गौतम के द्वारा कहे गये न्याय दर्शन में मेरा चित्त रमण नहीं करता है, कणाद के द्वारा प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन में भी वह भावानुगत नहीं होती, मीमांसा शास्त्र की भी मीमांसा वह नहीं समझती, तब मेरी बुद्धि गुणाविहीन निर्वाण को क्या सहेगी, फिर शून्य की तो बात ही क्या।

यहाँ कवि ने सब शास्त्रों को गौण बताकर अपनी बुद्धि को जनता की सेवा में लगाने का संकेत किया है। उनका मत है कि **शास्त्र जनता की सेवा के सामने फीके हैं।** उनका जनता जनार्दन के सामने अस्तित्व नहीं है। उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए चतुर्थ पद्य में कहते हैं-

शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ है, धर्म की चर्चा करना भी व्यर्थ है। शाश्वत पौराणिक चर्चा करना भी बेकार है। यदि आपने जनता का ध्यान नहीं किया नारायण को नहीं जाना जो सबके मन में स्थित है तथा न हीं जनता के लिए आपने कोई यत्न किया। **नर सेवा नारायण सेवा** का संदेश इस पद्य में उन्होंने दिया है। जनता की सेवा सर्वोपरि है। जनता की सेवा के आगे सभी धर्मग्रन्थ पौराणिक मान्यताएँ, धर्म भी व्यर्थ हैं। जनता को जाग्रत करने के लिए महान प्रयत्न की आवश्यकता पर जोर देते हुए वे कहते हैं;

**शास्त्रस्याध्ययनं वृथाऽधिकतरं धर्मस्य चर्चा वृथा**
**वैफल्यं तु गता कथाऽपि सकला पौराणिकी शाश्वती।**
**नो ध्याता जनता जनस्य हृदये नारायणः संस्थितो**
**नो ज्ञाता यद नो कृतोऽस्ति जनतोद्बोधनाय यत्नोऽथवा[4]।।**

आज आवश्यकता इस बात की है कि जनता द्वारा प्रदत्त शासन को चलाने के लिए जनता की सहमति में ही हमारी सहमति है, ऐसा विचार करके संगठित समाज की स्थापना कर **युगनिर्माण** की कल्पना को मूर्त्तरूप प्रदान करना चाहिए।

मनुष्य न दान से सुसंस्कृत हो सकता है, न तप से, न यज्ञ से न विद्या से न भगवा वस्त्रों से, न ही अखण्ड वैभव से, स्वार्थ रूपी राक्षस का विनाश कर सेवा रूपी देवता का व्रत धारण कर लोकाराधन निष्ठा के द्वारा ही मनुष्य संस्कारवान् बनता है। समाज में उसी की प्रतिष्ठा होती है।

ISSN 976-8645

सामाजिक कार्यों में, जनता के कार्यों में त्यागपूर्ण, पूर्णमनोयोग से ही मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है। जनता की सेवा ही परम सेवा है। नर सेवा ही नारायण सेवा है इस भाव का प्रतिक्षण ध्यान रखते हुए निष्ठा एवं पूर्ण कर्त्तव्य से लोकाराधन करना चाहिए।

वे कहते हैं–

**नो दानैर्न तपोभिरप्यतितरां नो चेज्यया विद्यया,**

**नो काषायपटैखण्डविभवैः स्यात् संस्कृतो मानवः।**

**हित्वा स्वार्थपरायणैकधिषणां धृत्वा च सेवाव्रतं**

**लोकाराधननिष्ठयैव पुरुषः संस्कार्यत धार्यते[5]।।**

जनता की सेवा को महत्त्व देते हुए श्री त्रिपाठी जी ने जनता तथा सेवा इन दोनों शब्दों को महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

वेदान्त में जिसको परब्रह्म कहा गया है। उसकी प्राप्ति यदि हो भी जाये तो क्या प्रयोजन, संसार को छोड़कर ब्रह्मानन्द रस को पीने से भी क्या प्रयोजन यदि इस विषमता से परिपूर्ण,भयावह इस जगत् को देखकर भी करुणा और दया से आपका चित्त व्यथित एवं आन्दोलित नहीं हुआ है। संसार के कष्टों को अपना मानते हुए उनका निवारण करना चाहिए। यह संसार दु:खमय है। जनता के दु:ख दर्द अनेक हैं। जनता के दु:खदर्दों को आपने नहीं समझा तो फिर परब्रह्म को भजने से क्या लाभ।

साधारण बात को महत्त्व देकर उसका वैशिष्ट्य बताया गया है तथा जनता की सेवा की पुरजोर शब्दों में पैरवी की है। जनता को जागने का आह्वान किया गया है।

वे कहते हैं–

**वेदान्तेषु यमाहुरेक पुरुषं तत्प्राप्तिलाभेन विं**

**ब्रह्मानन्दरसेऽपि किं ह्याधिगते संसारविच्छेदजे।**

**वैषम्याहितभीति सङ्कुलमिदं चालोक्य लोकं मनो,**

**नो कारुण्यसमाकुलं यदि न वा जातं व्यथान्दोलितम्[6]।।**

वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं ईश्वर को भजने से कोई लाभ नहीं हो सकता जब तक दीन दु:खियों की तरफ़ आपकी दृष्टि न हो।

ISSN 976-8645

जनता को ही अपनी कविता का केन्द्र बिन्दु मानकर अखण्ड और अखिल चैतन्य स्वरूप परब्रह्म को भी उसी रूप में व्यक्त करते हैं। जिस एक सत् को ज्ञानी पुरुष नाना रूपों में प्रतिपादित करते हैं। जो परम सत्ता है, अखण्ड है, वह अनेक रूपों में व्यक्त होकर, नाना नामों से तथा रूपों से जनता के चित्त में लीला करता है। कवि की यह मूलधारणा है कि जन-जन के हृदय में परब्रह्म विराजमान है अत: जनता पूजनीय है[7]। शास्त्रों का उदाहरण देकर अपनी बात कहना इस कविता की मुख्य विशेषता है। विशेष सन्दर्भों को शास्त्रों से लिया गया है। जनता का क्या स्वरूप है? उसके कार्य क्या है, इस सन्दर्भ में कहते हैं-

जो विमर्शयुक्त संघर्ष में रत है, जो हृदय में चुने वेदना और व्रण करने वाले, विषयुक्त बाणों को सहती हुई स्थित है, जो नित्य हालाहल पीकर नीलकण्ठ बनी हुई है। वह अद्भुत योद्धा जनता वन्दनीय है।

संघर्ष करना ही जिसका धर्म है, जो कष्टों को सहन करने की आदी हो चुकी है। प्रतिदिन हालाहल रूपी गरल का पान करती है। अन्यायों को सहती है, उनके खिलाफ़ संघर्ष करती है। इस संसार में जो रहने के लिए युद्धभूमि के योद्धा की तरह लड़ती है। यहाँ आचार्य त्रिपाठी ने जनता को साक्षात् परमशिव की संज्ञा दी है[8]।

जो जनता विश्राम करके पसीने से भीगी फिर एक बार मेहनत मज़दूरी करने लग जाती है। हाँफते हुए शरीर से असंख्य कष्ट उठाती हुई बार-बार गिर पड़ती है। हज़ारों करोड़ यातायातों के बीच भी जो अनवरत चलती रहती है, जो सौ-सौ संकल्पों-विकल्पों और संशयों में बीमार होकर भी स्वस्थ होती रहती है। **चरैवेति चरैवेति चरैवेति निरन्तरम्** इस आशय को पुष्ट करते हुए जनता का काम है-**गिरकर उठकर चलना।**

कष्टों से न घबराकर अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए परिश्रम करती है। चिन्ताओं से डरकर भी अन्त में उनसे मुकाबला कर फिर एक बार अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ती है। यहाँ पर कवि ने बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। वर्णन ऐसा लगता है जैसे चित्रमय झाँकी युक्त वर्णन चल रहा हो। परिश्रम ही सफलता की कुञ्जी है। इसको ध्यान में रखते हुए निरन्तर परिश्रम को ही सफलता का आधार मानती है। कवि के द्वारा परिश्रम को मुख्य स्थान दिया गया है तथा यह भी शिक्षा दी गई है कि परिश्रम के द्वारा ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है[9]।

**विभिन्नता में एकता** को बताते हुए कवि कहते हैं कि जो जनता नाना वेषों से युक्त होकर भी शारदा है, बहुत प्रकार से विभिन्न भाषाओं में व्यवहार करके जो अभिन्न रहती है, जो इस ब्रह्माण्ड रूपी वट वृक्ष पर बने अपने घोंसले में पक्षी बनकर रहती है। जनता को पक्षी की उपमा दी गई है और वह पक्षी कैसा है! जिसने इस ब्रह्माण्ड रूपी वटवृक्ष के नीचे अपना घोंसला बना रखा है। **वसुधैव कुटुम्बकम्** इसको चरितार्थ करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी ही कुटुम्ब है, घर है, परिवार है[10]।

ISSN 976-8645

चापलूस, भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए चाटुकारिता से युक्त, वाक्पटु व्यक्तियों की बात कवि ने इस रूप में की है। अनेक विशेषणों से मण्डित किसी पदों से कोई कथित नेता की स्तुति करे तो करता रहे, अपने सम्पर्क सूत्रों से सर्वत्र प्रभाव बनाता रहे तो वनाये, सभी जगह अपनी वाणी का घटाटोप निर्मित करता रहे तो मेरा उसमें क्या बिगड़ सकता है अर्थात् जनता के प्रतिनिधि के रूप में कवि कहते हैं जो लोग इन कार्यो में संलग्न हैं वो मेरा उद्देश्य भ्रमित नहीं कर सकते। आत्मविश्वास की झाँकी के दर्शन इस पद्य में दृष्टिगोचर होते हैं। जनता का विश्वास बना रहें यही मेरे लिए रामबाण औषधि है। मैं जनता का व्यक्ति हूँ और जनता के कल्याण के लिए बात करता हूँ। राजनीति सेवा का दूसरा नाम हो, जनता के कल्याण के लिए राजनीति करनी चाहिए। देश की सुरक्षा अखण्डता एवं अक्षुण्णता बनाये रखना भारत के प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्त्तव्य हो[11]।

मैं (कवि) न तो किसी की स्तुति करता हूँ, अपने शब्दों का जाल भी बुनता, नकली फूलों के समान शब्दों से विचित्र माला नहीं बनाता। मेरे अन्त:करण में तो सहज विभावित गुण वाली जनता आसीन है। वही मेरी वाणी को अपने आपसे व्यक्त करती है। यहाँ कवि का अभिप्राय यह है कि मैं तो जनता की बात करता हूँ, व्यक्ति विशेष के हित की बात करता हूँ। जनतन्त्र में जनता के हित की बात की जाये, इसी को पुष्ट करने का उपक्रम करते हैं यहाँ पर आचार्य त्रिपाठी। जनता की बात से सहमत होकर, मिल बैठकर सलाह-मशविरा कर व्यक्ति विशेष की समस्या का समाधान करना चाहिए। झूठी प्रशंसा से बचकर, जनता की बात को महत्त्व देकर उनके दु:खदर्द की समस्या का समाधान करना चाहिए, तभी जनतन्त्र बन सकता है[12]।

अपने स्वयं के अस्तित्व के माध्यम से व्यक्ति विशेष के अस्तित्व की बात करते हैं। मैं तो एक भंगुर बुलबुला हूँ, जिसने इस जनता रूपी महासागर में जन्म लिया है। एक दिन में यहीं कहीं खो जाऊँगा या इसमें कहीं विलीन हो जाऊँगा। अन्धकार या प्रकाश में एक छाया लगातार मेरे साथ चलती है। जो मेरे साथ निरन्तर कार्य करती है। रमणीय वस्तु को देखने पर वही मन को पर्युत्सुक बना देती है। काव्यरचना की प्रक्रिया में वही छाया प्रेरणास्रोत है। यहाँ कवि ने छाया के माध्यम से स्व व्यक्तित्व का निरूपण किया है। इसी छाया में तरल स्मृतियों की संहति समाई हुई है। इसी छाया में मैंने नियम बनाए, नियम तोड़े, नये आयाम बनाए। वह छाया जनता की कान्ति से युक्त होकर इस अरुणमय संसार में प्रकाशित होती है। वह मेरे अन्तस् में जन्म लेती है। इसकी सङ्गति पाकर ही मैंने सोचे गये रमणीय स्वप्नों को साकार किया, भावों को समुल्लसित एवं पल्लवित किया, ऐसे कार्यों को किया जो जनता के द्वारा क्रियमाण हैं, तथा जिनमें ही सारत्व है। कवि ने छाया को कवित्व शक्ति बताया है। यह ऐसी शक्ति है जो स्फूर्ति एवं चेतनाप्रदायक है। जनता के कार्यों को सम्पादित

ISSN 976-8645

करने से जो प्राप्त हुई है। समाज के द्वारा प्रदत्त भावों या अभावों के साथ जीवन के रस और सार को ग्रहण करता हुआ कवि अपना जीवन निर्वाह कर रहा है। मैं कहीं भी रहूँ, लेकिन जनता द्वारा प्रदत्त भावों का सहारा मिलता रहे, जनता का प्यार मिलता रहे ऐसी मेरी कामना है[13]।

स्वयं की कवित्व शक्ति को जनताजन्य मानते हुए जनता जनार्दन महादेव को अपनी कवित्व पंक्ति समर्पित करते हुए कवि कहता है **जो काव्य रस मैं रचता हूँ, जो गीत मैं गाता हूँ, विद्वानों की सभाओं में जो व्याख्यान मैं देता हूँ** उसमें इस जनता का भरपूर योगदान है। **यही मेरे अन्तस् को पवित्र करती है, मुझे शक्ति देती है, प्रेरित करती है।** कवि ने यहाँ पर पूरा श्रेय जनता को दिया है। समर्पण भाव से कवि जनता-स्तवन करता है।

कवि अपनी काव्यकलाचातुरी के माध्यम से धीरोदात्त नायक का लक्षण बताते हैं जो निम्न वर्ग में जन्म लेकर नवचेतना जगाने में रत है, वही सच्चा धीरोदात्त नायक है। यह सच है कि उदारता उन लोगों में होनी है जो वैभव-विहीन और परिश्रम में लगे हुए हैं। जिनके पास धन नहीं है, लेकिन उदारता है वे ही वास्तव में मनुष्य हैं[14]।

वर्तमान स्थिति पर व्यंग्य किया है। किसान जो पसीने से सना हुआ है, गरीब है, खेतीहर मज़दूर है। उसको अपनी झौंपड़ी से बलपूर्वक निकालकर उसकी भूमि छीनकर उस पर आक्रमण कर उसको लाचार एवं बेचारा मानकर निर्भय होकर मनुष्य सुखपूर्वक विचरण कर रहे हैं। किसानों का शोषण हो रहा है, श्रम को नज़रअंदाज़ करते हुए किसानों को प्रताड़ित किया जा रहा है। कुछ प्रभुत्वसम्पन्न तथाकथित लोग बाज पक्षी के जैसे निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं। यहाँ पर कवि ने आततायियों की संज्ञा बजू पक्षी से दी है। बजू पक्षी आन्तरिक रूप से कायर होता है। पर बाहर से डरावना दिखता है। उसी प्रकार ये आंतककारी भीतर से कायर और खोखले होते हैं। दु:शासन के द्वारा जैसे पाञ्चाली छली गई, वैसे ही इन प्रभुत्वसम्पन्न, खोखले दु:शासनों के द्वारा जनता रूपी पाञ्चाली प्रतिदिन छली जा रही है। गरीब के मुख से रोटी तक छीन ली गई है, उसके अधिकारों का हनन हो गया है। कुटिल नीति, कुत्सित आचरण, धोखेबाजी उद्ण्डता के द्वारा यह भोली-भाली जनता छली जा रही है इस पर कवि गहरा दु:ख व्यक्त करता है[15]। उनका दु:ख इन शब्दों में प्रकट हो रहा है-

**पाञ्चाल्या इव कृष्यते हतधिया दु:शासनेनानिशं**
**यस्या वस्तुमपीह चैव वदनाद् ग्रासस्तथाच्छिधते।**
**आमूलं छलिताऽशुभैर्नृपशुभि: कौटिल्यनीत्या च या,**
**सेवैयं जनता हता विदलिता कष्टां दशां प्रापिता[16]।।**

ISSN 976-8645

अत्यधिक कष्टों से प्रताड़ित होकर अत्यन्त दुर्बल मुख वाली ये जनता, धूलिधूसरित वस्त्रों को पहनने वाली ये जनता किस समाजकंटक के द्वारा इस व्यवस्था में पहुँचा दी गई है। धिक्कार है उन समाजकंटकों को जो ऐसा बर्बरतापूर्ण अनैतिक आचरण करते हैं। कवि ने जनता की बात को बल देते हुए कहा है, उनका दु:खदर्द बाँटने की कोशिश की है। वे कहते हैं इनके मन की बात कौन जानता है, कौन है, जो इनकी दर्द भरी कहानी सुनता है। कौन है जो इनके अधिकारों की बात करता है ? कौन है, जो इनके सिर पर शीतल हाथ फेरता है ? कौन है जो इनके दु:ख दर्द में भागीदार है ? कोई नहीं है। यह बेचारी जनता भयावह जंगल में हरिणी के समान विलाप करती रहती है।

यही प्रताड़ित जनता एक बार फिर अपने अस्तित्व का स्मरण कर, संगठित हो फिर अत्याचारों से बदला लेने के लिए समरक्षेत्र में पदार्पण कर चुकी है। कवि जनता का पक्ष लेकर कह रहे हैं। जनता ने एकजुट होकर अनाचार के खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद कर दी है। अपने अधिकारों को पाने के लिए जनता एकदम पूरे दल-बल के साथ तैयार है। जनता की विचित्र स्थिति का वर्णन करते हुए श्री त्रिपाठी जी ने कहा है कि इस जनता पर सब तरह से अत्याचार की तलवार लटकी हुई है। दुर्नीति के द्वारा सुलगाई एवं धधकती दावाग्नि से जलाई जा रही है दूसरी ओर भूस्वामियों द्वारा कुदालों से उखाड़ी जा रही है लेकिन यह जनता तो दूर्वा है फिर उग आती है। जनता का कितना ही दमन किया जाये, फिर एक बार वह मार्ग में चलते हुए राहगीर की तरह उचित पथ की तलाश में चल पड़ती है। यहाँ पर कवि ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। यहाँ नगरीय संस्कृति का वर्णन भी किया गया है। अतिक्रमण की झलक भी यहाँ देखने को मिलती है। भू-माफ़िया सरगनाओं के अत्याचारों का भी वर्णन है।

गगनचुम्बी इमारतों के नीचे रहने वाले झोपड़-पट्टी के मालिकों पर अत्याचार की पराकाष्ठा दिखलाई गई है। भू-माफ़िया राक्षस के बढ़ते हुए क़दमों पर लगाम कसने के लिए इस विन्ध्याचल की धरती पर ये जनता रूपी दूर्वा से फिर से उग आती है, फिर से हरी हो जाती है।

आचार्य त्रिपाठी ने जनता लहरी के माध्यम से इस ज्वलन्त मुद्दे पर काव्यमय चातुरी दिखलाई है। शब्द वैविध्य अनुपम है। शब्दविन्यास गतिशील-सा प्रतीत होता है।

शब्दों के इसी क्रम में, जनता के अत्याचारों के इसी प्रसङ्ग में कवि ने जनता की उपमा गाय से की है। वे कहते हैं, जब गाय बछिया रहती है तो अपनी भूखी माँ को दूर खड़ी कातर नेत्रों से देखती है। जब युवती होती है तो दोहन करने वालों के द्वारा थनों के ऊपर से दूध से भरे भाग से निचोड़ कर दूही जाती है। बूढ़ी होने पर बहुत सताई जा कर बधिक़ो के द्वारा बूचड़खाने में बलपूर्वक ले जाई जाती है, यहाँ कवि ने गाय के माध्यम से हृदयसंस्पर्शी मार्मिक चित्रण किया है, जनता की

ISSN 976-8645

तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है। बाल्यावस्था में गरीब के बच्चों को प्रताड़ित किया जाता है, शिक्षा, भूख, गरीबी जैसी परेशानियों से वे पीड़ित रहते हैं। युवावस्था में जनता के ऊपर जो अनाचार किया जाता है उसका वर्णन किया है। लूटपाट बलात्कार जैसी कुत्सित बुराइयों पर कटाक्ष किया है। भारतीय जनता निर्दयतापूर्वक सताई जा रही है। बच्चे, औरत, बूढ़े सभी बुरी तरह से आक्रान्त हैं, पीड़ित हैं। गाय के माध्यम से वास्तविक स्थिति का चित्रण इस जनतालहरी काव्य की प्रमुख आधारशिला है। कवित्व शक्ति यहाँ पूर्णरूपेण बलवती है। कितना हृदयसंस्पर्शी चित्रण है! आचार्य त्रिपाठी इस विद्या के इतने कुशल चितेरे हैं कि अपने विभिन्न रंगों के माध्यम से जनता की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। आडम्बरपूर्ण वर्णन, झूठी उपमाएँ उनको प्रारम्भ से ही नागवार गुज़री है।

इसी क्रम में वे कहते हैं जैसे गाय जब ब्याहती है तब वह टकटकी निगाहों से अपने बच्चों को देखती है, दूध दुहने पर वह हम्बा-हम्बा शब्द करती है तथा निर्दयतापूर्वक पीटी जाती है। अब वह गाय बूढ़ी हो गई है। शरीर में सर्वत्र घाव हो गये हैं। इसी प्रकार यह जनता भी निर्दयतापूर्वक पीटी जा रही है। समाजकटंक आततायी बेवज़ह इसको परेशान कर रहे हैं। अब यह छिन्न-भिन्न जनता रूपी गाय कहाँ जाये, किसकी शरण में जाये। इसकी प्रतिष्ठा, मानसम्मान, वैभव सब नष्ट हो गया है। कर्त्तव्यों की इतिश्री हो गई है। अधिकारों की होली जला दी गई है। विचारों की शृंखला तोड़ दी गई है।

भारतीय समाज की वर्तमान स्थिति का चित्रण कर रहे हैं, ढोंग एवं आडम्बर से परिपूर्ण होकर धर्म का धूसर लिबास जिन्होंने पहन रखा है धर्म के नाम पर जो ठेकेदारी प्रथा के जनक हैं वे तो तिनके से ढके कुएँ की तरह हैं, ये सती को जलाने के समर्थक अपनी पाण्डित्य प्रतिभा का ढोंग करते हैं, प्रदर्शन करते हैं। ये मनुष्यों में राक्षस जो स्वयं ही नारी को जला रहे हैं। ये तो बुद्धिविहीन पशु हैं। जो केवल इस पृथ्वी पर भारतुल्य हैं। एक बानगी देखिए-

**एके धूसर धर्मकञ्चुकवृता आच्छन्नकूपोपमा**
**अन्ये शास्त्रमुदाहरन्ति च सतीदाहप्रचाराय ये।**
**तेऽमी मानुषराक्षसाः स्वयममहो नारीं दहन्त्यत्र वा**
**नैतेषां परमार्थतो भवति स्वल्पं किमप्यन्तरम्**[17]**।।**

कवि आह्वान कर रहा है उस जनता से जो सुप्त है, कातर हो चुकी है। अब ताण्डव करने की प्रबल आवश्यकता है। जैसे भगवान धूर्जटि ने स्वयं स्त्री पर होने वाले अत्याचार के खिलाफ़ दक्षयज्ञ को विध्वंस कर ताण्डव नृत्य के द्वारा वीरभद्र गण को उत्पन्न किया था। कुपथ पर चलने वाले ऐसे बुद्धिहीनों को अनुशासित करने के लिए जनता को मिलकर ऐसा ही ताण्डव नृत्य करना चाहिए। कवि ने ताण्डव नृत्य के द्वारा दमन करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

ISSN 976-8645

असहाय लोगों पर ही विपत्ति अपना रूप यौवन दिखाती है। कवि ने इसका वर्णन किया है कि गर्मी में अंगारे जैसे कंकरों से तपाता हुआ मित्र भी अमित्र हो जाता है। टूटी झोंपड़ी पर बरसता हुआ भी देव दैत्य बन जाता है। भूख से पीड़ित के लिए शहद भी विष हो जाता है। ईश्वर भी उसके दु:ख को दरक़िनार कर देता है, कोई उसकी सहायता नहीं करता है। गरीब बेचारा अलग-थलग पड़कर एकाकी जीवन देता है।

सामन्तशाहों के द्वारा सताये हुए के लिए सारा विश्व विरुद्ध हो जाता है। **समरथ को नहि दोष गुसाईं** इसको चरितार्थ करते हुए समर्थ व्यक्ति को कोई दोष नहीं देता है। कवि ने यहाँ पर अत्यधिक चिन्ता प्रकट की है तथा ईश्वर को भी उसी स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया है। कामना की है कि ईश्वर को उसका दु:खदर्द बाँटना चाहिए। देवदूत के रूप में किसी का अवतरण होना चाहिए। **अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्** की तरह गरीबों का मसीहा पैदा हो।

भारतीय समाज की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कह रहे हैं पक्ष और विपक्ष के नेता आपस में एक दूसरे की टाँग खिचाईं कर रहे हैं। राष्ट्र की भोली-भाली जनता को मूर्ख बना रहे है। असत्य को ही सत्य मान रहे हैं। राज्यलक्ष्मी की कामना से तो ये अपने स्वजनों की भी हत्या कर देते है। राज्यलक्ष्मी या कुर्सी ही इनके लिए सर्वस्व है। राज्य लक्ष्मी को पाने के लिए इनकी गति सुन्दोपसुन्द जैसी हो रही है। पारस्परिक कलह को बढ़ावा दे रहे हैं। कवि ने इस पद्य के माध्यम से हमारे देश की संसद तथा राज्यों की विधानसभा में चलने वाले धारावाहिक युद्ध की स्थिति का चित्रण किया है। तथा नेताओं को सीख दी है कि वे पहले अपने **गिरेबान** में झाँक कर देखें। भारतीय नेताओं के स्वरूप का चित्रण करते हुए वे कहते हैं जनता की सेवा का संकल्प लेकर वह अपनी ही सेवा करता है। नेता प्रतिष्ठित पद पहुँचकर छोटे तबके के लोगों को बड़ी हिक़ारत की दृष्टि से देखता है। शुभ्र खादी के वस्त्र का मोह नहीं त्यागता हुआ मैली तृष्णा को वह छोड़ नहीं पाता। उसका प्रत्येक कार्य आडम्बर से परिपूर्ण होता है। यह नेता नवयौवन से युक्त है। नये मदवाला अहंकार से युक्त है, हाव भाव दिखाकर घुमा फिर कर बातें करना इसकी ख़ासियत है। बड़े-बड़े बोल में बोलना जानता है। लज्जा को त्याग कर यह जड़पुरुष बड़ी गर्वोक्ति से सभा में बोलता है तथा अपने नाम को सार्थक करता है। **कालस्य कुटिला गति:** के सिद्धान्त को न तो यह जानता है, न पहचानता है। इस राजनीति में जो लोग लगे हुए हैं उनमें से अधिकांश संस्कार विहीन हैं। तथा सदा लोगों का अनर्थ करते रहते हैं। इन सबसे त्रस्त होकर जनता अपमानित की गई विद्या लोकापावाद से कलुषित हुई कीर्ति की तरह कृश हुई लक्ष्मी की तरह अपने ही राष्ट्र में खिन्न होकर निर्वासित जीवन जीने को

ISSN 976-8645

मज़बूर हैं। धर्म के नाम पर राजनीति करने वाले तो धिक्कार के पात्र है। ये तो धर्म के आडम्बर के द्वारा जनता की पसीने की कमाई को चूस रहे हैं, मुफ़्त में उसका मजा ले रहे हैं। जनता को अधिकारों से च्युत कर रहे हैं। कर्तव्य पथ पर आरूढ़ उनको बहला-फुसलाकर दिग्भ्रमित कर रहे हैं। इनको मानने वाले तथा इनके बताये गये अनीति युक्त रास्तों पर चलने वाले लोग भी निन्दनीय हैं। अस्पृहणीय है। दु:खपुञ्जों को सहती-सहती यह जनता सही समय आने पर सिंह की उछाल करने के लिए तैयार है। नेताओं को मानमर्दन करने लिए सब अपनी मुट्ठी बाँधे हुए और सीना-ताने खड़े हुए है और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए एकजुट हो गये हैं तथाकथित घमण्डी अविनयी ये नरपशु, नरभक्षी अपने क्रूर आचरण से धरती पर बोझ हैं। ये धरती इनके अत्याचारों से स्वयं लज्जा का अनुभव कर रही है और यह धरती अब नीचे धँसती जा रही है। जनता ही इसको उबार सकती है। कवि प्रार्थना करता है कि एक ऐसा तेजपुञ्ज पृथ्वी पर अवतरित हो जो इन दारुण दु:शासनों का मानमर्दन कर सके, ये तेजपुञ्ज जनता में ही समाहित हैं। स्वराज्य की पुनर्स्थापना हो, वैभवयुक्त भारत बने विश्वगुरु के पद पर भारत फिर से आसीन हो। जो भव्य भवनों में रहकर अनवरत भोग साधना करने में संलिप्त हैं, जो स्वाद ले लेकर षड्रसों से युक्त भोजन करते हैं। गरीब जनता से अनर्गल बकवास करते हैं। ये सभी तिनके के टुकड़े के समान उपेक्षा के पात्र हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य के होते हुए तमोगुण में रत हैं। कवि आशा कर रहा है कि वेग से भरी हुई एक आँधी उठेगी और इनको नष्ट करके ही दम लेगी।

जो कुदालों को उठाकर भूमि खोद रहे हैं, जो हल चला रहे हैं, जो अपने कन्धों पर विशाल हल और लागंल को उठा रहे हैं। जो मशीनों से घिरे लोहे को गला रहे हैं। जो कपड़े सी रहे हैं। वे हाथ अब धरती को नापने के लिए, दिशाओं को मथने के लिए, आकाश को छूने के लिए उठ खड़े हुए हैं। कवि भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते है कि इस घोर विपत्ति में वे हमारी रक्षा करें। कालिय नाग की तरह घोर पाप करने वाले इन नेताओं को जनता कठोरता के साथ अनुशासित करें। यह राष्ट्र रूपी गोवर्धन जनता के सुख सम्बल को बढ़ाने का आधार बने। अन्धकार को सूर्य की किरणें मिलकर भेदती है। इस न्याय से जनता संगठित होकर, एकजुट होकर पृथ्वी पर प्रसारित इस अन्धकार को दूर करें। सर्वत्र शान्ति प्रसारित हो। कवि राष्ट्रमङ्गल की कामना करते हुए कहता है-

हम होता है। जनता की महाशक्ति ऋत्विज है, प्रत्येक जन-जन अब सुदिवस वाला सुन्दर कल वाला बने, भविष्य के सपनों का निर्माण वह कर सकें, युगद्रष्टा बने, युगनिर्माता बने, इस जनतन्त्र रूपी यज्ञ में सभी अपने कर्त्तव्यों की पावन आहुति डाले, राष्ट्र आराधन करे, निर्वाचन में

ISSN 976-8645

सुशासन द्वारा प्रतिनिधि चुने जाएँ। जाति, धर्म, सम्प्रदाय का भेद समाप्त हो, नेतागण अपने कर्त्तव्यापालन में दृढ रहें, भारतीय लोकतन्त्र में आने वाला कल सुन्दर बने। इसी कामना के साथ कवि यह कहते हैं–

**होतारो वयमृत्विगस्तु जनताशक्तेर्महासङ्गमः**
**सुप्रातः सुदिवाः सुसन्धिसमयः सुश्वा जने जायताम्।**
**यज्ञेऽस्मिन् प्रविभज्यतां प्रतिजनं निर्वाचने शासनं**
**देखनालोकः प्रसरीसरीतु सुभागश्चालोकतन्त्रध्वनः**[18]।।

इस रूप में इस कविता के माध्यम से आचार्य त्रिपाठी जी ने देश के प्रति मानव मात्र के संकल्पों का उसके कर्त्तव्यों का देशप्रेम के लिए सर्वस्व अर्पण करने का सामाजिक एकता को मज़बूती प्रदान करने भ्रष्ट लोकतन्त्र में नेताओं, अफसरशाहों को हटाने का उनको बुद्धि दे ऐसी प्रार्थना करने का, नवनिर्माण करने का, भारतीय समाज को वास्तविक स्थिति पर लाने में जनता जर्नादन की भागीदारी का, कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने का, जनता के ऊपर किये अत्याचार और अनाचार के खिलाफ दुन्दुभि बजाने का भरसक प्रयास किया है। यह कविता जनता के बारे में सोचे गये, उसकी स्थिति को देखकर किये गए प्रण के रूप में प्रसारित है। आचार्य त्रिपाठी ने अपने मनोवेगों को पूरी तरह से कविता में घोलकर यह रसपीयूष बनाया है जिसका कविगण, देश का प्रत्येक नागरिक, जागरुक जनता, जन–जन पान करेंगे। कवि यह भी चाहते है कि जनतान्त्रिक भारत सदैव जनतन्त्र की संज्ञा को सार्थक करता हुआ एकबार फिर विश्व मानचित्र के शिखर पर अपना स्थान कायम करें।

## अन्तटिप्पणी

1. पायाद् वः श्रमिकस्य भालनिचितं घर्माम्भसां जालकं
   प्रोञ्छन्तीव रसात् प्रसारिकरा कारुण्यनिःष्यन्दिनी।
   क्षेत्रे कार्यरतांश्च पामरजनानाह्लादयन्ती शुभा
   छाया साऽऽतपदुस्सहेऽत्र दिवसे कृष्णाम्बुदस्यायता।।
2. केचिद् भक्तिपरायणा भवभयादर्चन्ति देवांस्तवैः
   केचिच्चाटुरताः खलांश्चलधियो नेतॄन् प्रभूञ्छ्रीमतः

ISSN 976-8645

अस्माकं तु निसर्गतः स्थितिलयाविर्भावहेतुः परं
योगक्षेमविद्यायिनीह जनता राष्ट्र सा स्तूयते।।

3. जनतालहरी–तृतीयपद्यम्
4. तत्रैव–चतुर्थपद्यम्
5. तत्रैव–पञ्चमपद्यम्
6. तत्रैव–षष्ठपद्यम्
7. एकं सद् बहुधा वदन्ति यदिहं विप्राः परं पारगं
यच्चैतन्यमखण्डमेकमखिलं ब्रह्माण्डभाण्डे स्थितम्।
तन्नानात्वविभक्तमप्रतिहतं संख्यैरसंख्यैः शिवै
रूपै रूपितसर्वनाम्नि जनताचिद्धाम्नि लीलायते।।
8. या सङ्घर्षरता विमर्शसहितं या मर्षयन्ती स्थिता
प्रत्युप्तान् हृदि वेदनाव्रणकरान् बाणान् विषैः समप्लुतान्
नित्यं हालाहलं निपीम जनता या नीलकण्ठायते
वन्द्या साऽद्भुतसङ्गरैकनिपुणा संसारभूमौ दृढा।।
9. जनतालहरी–श्लोकसंख्या– 9
10. तत्रैव–श्लोकसंख्या– 10
11. तत्रैव–श्लोकसंख्या–11
12. तत्रैव–श्लोकसंख्या–12
13. तत्रैव–श्लोकसंख्या–13
14. तत्रैव–श्लोकसंख्या–18
15. तत्रैव–श्लोकसंख्या–20
16. तत्रैव–श्लोकसंख्या–21
17. तत्रैव–श्लोकसंख्या–29
18. तत्रैव–श्लोकसंख्या–50

## सन्दर्भग्रन्थसूची

1. जनतालहरी (लहरीदशकम्) त्रिपाठी, राधावल्लभ, आधुनिक संस्कृत साहित्य पुस्तकालय।